Year-8; Sept. 2017
ISSN–2231-1130
UGC Sr. No. – 48398
VEETHIKA

स्त्री लेखिकाओं की दृष्टि में स्त्रियाँ और धर्म

शिवानी कन्नौजिया*

भारतीय समाज में धर्म की वर्चस्वमूलक भूमिका है। धर्म मनुष्य को क्षमा, दया, अहिंसा, करूणा आदि मानवीय मूल्यों का विकास करके उसे श्रेष्ठ और जिम्मेदार नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करता है, लेकिन धर्म का विकृत और लिंग आधारित स्वरूप स्त्रियों को हाशिए पर धकेलता है। वह स्त्री तथा पुरुष के लिए अलग–अलग आचार संहिता निर्धारित करता है। स्त्रियों को परंपरागत भूमिका में ढालने के लिए धार्मिक किवदंतियों, मिथकों, पौराणिक चरित्रों आदि को माध्यम बनाया जाता है तथा उनके मस्तिष्क में यह बात बैठा दी जाती है कि यदि बिना किसी प्रतिरोध के वह आदर्श स्त्री के चरित्रों का अनुकरण करती हैं तो वह संस्कारवान है, अन्यथा कुलटा है। जिसके परिणामस्वरूप स्त्रियों के भीतर मुक्ति की छटपटाहट होते हुए भी वह विरोध करने का साहस नहीं जुटा पाती है। स्त्री लेखन समाज में इसी स्त्री मुक्ति का शंखनाद है। स्त्री लेखिकाओं ने एकमत होकर स्त्री अधीनता के इस अतार्किक और अमानवीय धार्मिक आडम्बरों के छल की खोज की है साथ ही धर्म को माध्यम बनाकर स्त्री पर आधिपत्य स्थापित करने वाली अतीत से लेकर वर्तमान समय तक की सभी मान्यताओं का विरोध किया है। उन्होंने अपने लेखन में स्त्री मुक्ति की इस छटपटाहट व स्त्री के संघर्ष को रेखांकित किया है।

भारतीय धार्मिक व्यवस्था में स्त्री को सम्मान्नीय स्थान दिया गया है। वैदिक काल से ही स्त्री पुरुष की सहधर्मिणी बनकर धार्मिक क्रियाकलापों का सम्पादन करती आयी है। यज्ञादि में भी स्त्रियों का मुख्य स्थान रहा है। भारतीय धर्मग्रन्थों में भी स्त्री को आदिशक्ति के नाना रूपों में चित्रित किया गया है। ऋग्वेद से लेकर वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य में भी स्त्री के कर्मठ जीवन, त्याग और उत्सर्ग आदि गुणों को प्रधानता दी गयी है। स्त्री का मातृत्व पक्ष केवल शास्त्रों में ही नहीं, अपितु दैनिक व्यवहारों में भी पूजनीय रहा है।

भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के लिए देवी शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। साहित्य की समस्त विधाओं और कलाओं में भी स्त्री को देवी का स्वरूप कहा गया है। प्राचीन काल से ही स्त्रियों के नाम के साथ देवी लिखने की परम्परा चली आ रही है, जैसे – महादेवी, श्रीदेवी आदि। यह इस बात का प्रतीक है कि हिंदू विचारधारा में स्त्री को देव श्रेणी की सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। स्त्री को देवी माने जाने पर व्यंग्य करती हुई सुधा अरोड़ा कहती हैं कि **''औरतों को भारतीय संस्कृति में इंसान का दर्जा दिया कब गया? वह तो देवी है। श्रद्धा की मूर्ति है। पूज्यनीय–वंदनीय है, और देवियाँ बोला नहीं करती, वे तो पूजा के पंडाल में सजी–धजी, मूक–बधिर ही अच्छी लगती हैं।''**[1] धर्मशास्त्रों ने स्त्री का पद–पद पर सहयोग व सम्मान करने का निर्देश दिया है, और उसकी के आधार पर परिवार में सुख शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना को संभव बताया गया है, परन्तु वर्तमान समय में स्त्री की स्थिति को देखकर उसके स्थान का पता आसानी से लगाया जा सकता है। स्त्रियों की स्थिति को स्पष्ट करते हुए मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि **''देवताओं के जयजयकार करते हुए उन स्त्रियों के बलात्कार हो रहे है, जिन्हें देवी की संज्ञा दी जाती हैं। उन बच्चों के पेटों में संगीने धंसी हैं, जिनके लालन–पालन का जिम्मा धर्मगुरुओं ने औरतों को दिया था।''**[2] यह सर्वविदित है कि आज धर्म और नैतिकता के नाम पर स्त्रियों के साथ अत्याचार हो रहे हैं, और उनका यौन–शोषण भी किया जा रहा है, क्योंकि स्त्रियों ने **''धार्मिक शास्त्रों की नैतिकता पर खरी उतरने के लिए अपने अस्तित्व को होम करने करने से भी गुरेज नहीं किया।''**[3] नैतिकता का सम्बन्ध स्त्री और पुरुष से ही होता है, और अनैतिकता का भी।

* रिसर्च फेलो. हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

लेकिन ऐसा न मानकर एक ही काम के लिए पुरुषों को क्षमा कर दिया जाता है और स्त्री को अपराधिनी मानकर दंडित किया जाता है। इस तरह के इन दोहरे मानदण्डों को स्त्री लेखिकाएँ खारिज करने का प्रयास अपने लेखन के माध्यम से कर रही हैं।

वर्तमान समय में स्त्री के प्रति दुहरे प्रतिमानों के विरुद्ध स्त्री स्वतंत्रता के नारे को बुलंद करते हुए लेखिकाएं लेखन कार्य कर रही हैं, इस देवी स्वरूपा छवि को स्पष्ट करते हुए क्षमा शर्मा कहती हैं कि **''स्त्रीवादी विचार ने और किया सो किया पूज्य होने के इस विचार की धज्जियाँ उड़ा दी है। पहली बार स्त्री को पता चला कि देवी होने के जिस अभिमान से वह मरी जा रही थी वह दरअसल उसकी महानता का आख्यान नहीं, मर्दों द्वारा बनाया गया ऐसा विचार भर था, जिसने कभी पूजकर तो कभी पीटकर अपनी सत्ता कायम कर रखी थीं।''**[4]जो पुरुष प्रधान समाज की एक चाल थी जिसने प्राचीनकाल से ही स्त्रियों को अपने अनुरूप चलने की परम्परा कायम की है।

भारतीय संस्कृति ऐसी है, जहाँ स्त्री को देवी मानकर पूजा की जाती है, और धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंत, रमन्ते तत्र देवता' इस कथन पर प्रश्न करते हुए सुधा अरोड़ा कहती हैं कि **'' इस सूक्तिवाक्य को लिखने वाले यह भूल गए हैं कि सिर्फ अपनी जाति और अपने धर्म की स्त्रियों की पूजा करना श्रेयस्कर है, दूसरे धर्म की स्त्रियों पर बलात्कार कर उनके माथे पर गोंदकर, उन्हें जिंदा जला देने की अनुमति धर्म देता है। यह काम धर्म के नाम पर किए जाए तो करने वाले को पाप नहीं लगता।''**[5]भारतीय संस्कृति और साहित्य में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते; रमन्ते तत्र देवता से लेकर 'नारी तुम श्रद्धा हो.....' तक स्त्री की महिमा का गुणगान किया गया है। वह पूज्यनीय व वंदनीय है। पूज्यनीय बने रहने के लिए धर्मग्रन्थों और पुराणों में उसके अंतहीन कर्तव्य गिनाए गए हैं। **''वेदों में पुराणों में पुराने नए लेखन में स्त्री कहीं भी अनुपस्थित नहीं है। मामला यहां भी वही है, पुरुषों की कलम से स्त्री के लिए नियम, कायदे बने, देह और कन की स्वतंत्रता की सीमाएं बांधी गई उसके कर्तव्य और अव्यावहारिक अधिकार भी बताए गए जिसके मन में जो आया, लिखा। दया–करूणा भी कम नहीं मिली। आंचल में दूध भरा रहा, आंखों में पानी। किसी–किसी ने साहस भी देने की कोशिश की, नैतिकाओं की गंठरी में बांधकर।''**[6]इस प्रकार पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में स्त्री को व्यक्ति की बजाए 'वस्तु' की संज्ञा दी जाती है, और उस 'वस्तु' पर पुरुष के रूप में पहले पिता का फिर पति का और अन्ततः पुत्र का अधिकार होता है मनु जैसे स्मृतिकारों ने भी स्त्री को कभी स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं समझा, इनके अनुसार–

''पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री
स्वान्त्रयमर्हति।।''[7]

इस प्रकार प्राचीन काल से स्त्रियों को पुरुष के अनुसार रहने की सलाह दी जाती रही है। वह कभी खुद पर अधिकार रखने के योग्य ही नहीं समझी गयी।

आज विश्व के जितने भी धर्म हिंदू, मुस्लिम, इस्लाम, कैथोलिक, जैन, बौद्ध, सूफी, यहूदी, सिक्ख आदि सभी के संस्थापक पुरुष हैं, स्त्री नहीं, और न ही स्त्री किसी धर्म की संचालिका है। **''हिंदू धर्म हो मुस्लिम या ईसाई अथवा कोई अन्य धर्म ये सबके सब पितृसत्ता के समर्थक हैं।''**[8]इसलिए पुरुष प्रधान समाज ने धार्मिक संस्थाओं व व्यवस्थाओं में सदैव स्त्रियों को दोयम दर्जे का समझकर प्रताड़ित किया है।

धर्मशास्त्रों का निर्माण करने वाले भी पुरुष थे और नियम कानून बनाने वाले भी पुरुष ही थे, इसलिए **''पुरुष कभी स्त्री के साथ मित्र हितैषी नहीं रहा। जज, ज्यूरी, अभियुक्त आदि सभी की भूमिका में अदालत में खुद बैठा है, अतः स्त्री की फरियाद का कान काट देना और उल्टे उसे ही सींखचों के पीछे धकेल देना उसका 'धर्म' है।''**[9]दुनिया की हर सभ्यता और हर धर्म में स्त्री जाति के प्रति ऐसा ही रवैया रहा हैं,

स्त्री दमन के सैकड़ों रूप रहे है, जिन्हें समाज के लिए और स्त्रियों के हित के लिए कहकर प्रस्तुत किया गया हैं।

पितृसत्तात्मक समाज में स्वयं को सर्वोच्च मानने वाला पुरुष यह सहन नहीं कर सकता हैं कि धार्मिक दृष्टि से स्त्री पुरुष का मुकाबला कर सके। इसलिए वह झूठी धार्मिकता एवं संस्कारों का आवरण ओढ़कर वह स्त्री से श्रेष्ठ ही बना रहना चाहता है। **''स्त्री असमानमात का मूल स्त्रोत धर्म ही है। ईसाई, इस्लाम, यहूदी, हिन्दू, जैन, सिक्ख या किसी भी धर्म में स्त्री को दोयम दर्जे का जीव माना गया है। सभी धर्मों में पुरुष को स्त्री से दूर रह ने की सलाह, हिदायत और शिक्षा दी है। सभी धर्मों का प्रथम दृष्टया यह माना है कि सृष्टा या सर्वशक्तिमान पुरुष ही होता है।''**[10]इसलिए धार्मिक ग्रंथों में भी स्त्रियों के साथ किए गए धार्मिक भेदभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। स्त्री न तो पूजा–पाठ, कथा, हवन कराने वाली पंडित और न ही मौलवी, न ही पादरी है। जिस पर कठोर व्यंग्य करते हुए मैत्रेयी पुष्पा का कहना है कि **''स्त्रियाँ तो खैर सभी अछूत होती हैं, मगर यहाँ भी सवर्ण स्त्रियों को पर पुरुष हए समाज को गंवारा नहीं, पर वे देवताओं को छू सकती हैं। उनकी पुजारिन बनना हमारे लिए ललक का विषय रहा क्योंकि हमारा मंदिर में घुसना अपराधा था।''**[11]धार्मिक व्यवस्था व धार्मिक संस्थाओं में 'स्त्री' को कोई स्थान नहीं दिया गया है। इसलिए स्त्रियों को ये अधिकार भी नहीं मिला कि वे धार्मिक नियम व परम्पराओं को निर्धारित व नियमित कर सकें।

धार्मिक व्यवस्था ने स्त्रियों के लिए जो नियम व कानून बनाए हैं। प्राचीनकाल से अब तक उसमें बहुत सुधार नहीं हुआ है। स्त्रियों की स्थिति अभी भी दयनीय है जिसके उदाहरण हमें वर्तमन समय में भी देखने को मिल जाते हैं जैसे– महाराष्ट्र के अहमदनगर के बाहरी हिस्से में एक गांव शिंगनापुर है। वहाँ के मंदिर में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है। वर्तमान समय में भी इस निषेध को आध्यात्मिक समिति के लोग सही मानते हैं, जिसकी पुष्टि 28 दिसम्बर 2015 के जनसत्ता में छपी इस खबर के माध्यम से हो जाती है। **''महाराष्ट्र के अहमदनगर का शनि शिंगनापुर मंदिर हंगामे की वजह बना, पुणे के एक सामाजिक संगठन की महिलाओं ने वहाँ पहुँचकर पूजा करनी चाही तो सुरक्षा कर्मियों ने उन्हें रोक दिया।''**[12]यहाँ पर स्त्रियों का मंदिर में प्रवेश इसलिए वर्जित है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि यह मंदिर सूर्यदेव को समर्पित है। शनि शिंगनापुर और कोल्हापुर के मंदिरों के गर्भगृह में पुरुष तो प्रवेश कर सकते हैं लेकिन स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है। रूढ़िवादी परम्परा के लोग इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि स्त्रियाँ हर महीने अपवित्र हो जाती हैं। इसलिए उनका मंदिर में अन्दर प्रवेश वर्जित है।

धर्म और धार्मिक मान्यताओं के नाम पर स्त्रियों के साथ भेदभाव होता रहता है, धार्मिक स्थानों पर उनकी छाया तक का प्रवेश वर्जित जाता रहा है। शनि शिंगनापुर ही इसके उदाहरण स्वरूप नहीं हैं, बल्कि भारत के कई ऐसे मंदिर हैं, जहाँ स्त्रियों को अन्दर जाने की अनुमति नहीं है। **''केरल के पद्मनाथ स्वामी मंदिर में महिलाओं का प्रवेश वर्जित है। इसी तरह केरल के ही सबरीमाल अयप्पा मंदिर में इस से पचास वर्ष की महिलाओं के प्रवेश पर पाबंदी है।..... राजस्थान के पुष्कर में स्थिति कार्तिकेय मंदिर में महिलाओं का प्रवेश वर्जित है, वहीं मध्यप्रदेश के गुना के मुक्तागिरि मंदिर में महिलाएं सिर्फ पारंपरिक पोशाक में ही प्रवेश कर सकती हैं। दक्षिण दिल्ली में स्थिति हजरत निजामुद्दीन औलिया की दरगाह में भी महिलाओं को प्रवेश का अधिकार नहीं है। दिल्ली की जामा मस्जिद में सूर्यास्त के बाद महिलाएं प्रवेश नहीं कर सकती है।''**[13] केवल हिंदू समाज में ही ऐसी मान्यताएं नहीं हैं, बल्कि हिन्दू, मुस्लिम सभी धर्मों के लोगों में स्त्री को लेकर ऐसी ही मानसिकता व्याप्त है।

इस्लाम धर्म ऐसे तो स्त्रियों के प्रति काफी न्यायपूर्ण है, लेकिन शरीयत के पालन करने वाले मौलवियों ने हर बार धर्म के नाम पर स्त्रियों के साथ भेदभाव किया है। वर्तमान समय में इसका

प्रचार–प्रसार देखा जा सकता है। इसका ज्वलंत उदाहरण दक्षिम मुंबई में स्थित हाजी अली दरगाह है। जहाँ स्त्रियों को दरगाह में जाने देने की अनुमति नहीं है। यद्यपि 2012 के पहले स्त्रियों को दरगाह में जाने की अनुमति थी, लेकिन **''अरब सागर में पत्थरों से बनी जमीन पर स्थित यह दरगाह पर–जो दक्षिण मुंबई में स्थित है–इसके पहले 2012 तक महिलाएं अंदर तक–अर्थात् सूफी संत की मजार तक जाती रही। मगर प्रबंधन ने प्रवेश पर रोक लगाते हुए उसे शरीयत के आधार पर जायज़ घोषित किया है।''**[14] इस्लाम धर्म में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं मिलता है कि पुरुषों के साथ स्त्रियां नमाज नहीं पढ़ सकती हैं, लेकिन शरीयत का पालन करने वाले मौलवियों ने हर बार धर्म की हिफाज़त के बहाने स्त्रियों के साथ पक्षपात किया है। **''मौलाना सज्जाद नदवी कहते हैं – यह गैर इस्लामिक नहीं है, पर कुछ दूसरी वजहों से औरतें घर में ही नमाज पढ़े तो बेहतर है।''**[15]पितृसत्तात्मक समाज ने धर्म के नाम स्त्रियों को सदैव ही छला है। ऐसे धर्मशास्त्रों का विरोध करती हुई मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि **धर्मशास्त्र से हमें घृणा रही है, घृणा होती है। धार्मिक ताकतों की चालबाजियों को हम समझ गए हैं, इनका मकसद समाज का हित करना नहीं लोगों की जिन्दगी पर कब्जा करना है।''**[16]

प्राचीन काल से ही समाज धर्म से चलता आया है, इसलिए असली खुराफात धर्म ने ही की है। सभी धर्मों में स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रहने के निर्देश दिये गए हैं, क्योंकि धर्मसत्ता सदैव से ही पुरुषों के अधीन रही है, लेकिन अब सत्ता के विरुद्ध विरोध होने प्रारम्भ हो गए हैं, जिसके विषय में कात्यायनी का कहना है कि **''सामंती सत्ता का ईश्वरीय स्वीकृति को रद्द करते हुए क्रान्तिकारी पूंजीवादी ने पहली बार मानवीय अस्मिता की बात की, धर्म केन्द्रित (Theocentric) समाज की जगह मानव केन्द्रित (Anthropocentric) समाज की बात की।..... नारी समुदाय ने पहली बार मानवीय अस्मिता की चेतना को आत्मसात् किया।''**[17]भारत के विभिन्न राज्यों में छोटे–छोटे शहरों, गांवो से सभी धर्मों की स्त्रियाँ धर्म के द्वारा किये जा रहे अन्याय व अत्याचार के खिलाफ उठ खड़ी हुई हैं। **''भारत में एक ईसाई स्त्री ने सुप्रीम कोर्ट में केस करके स्त्री का सम्पत्ति में हिस्सेदार होने का मुकदमा जीता''**[18]इस प्रकार ईसाई धर्म में भी स्त्रियों से भेदभावपूर्ण व्यवहार किया गया है।

कैथोलिक धर्म में भी स्त्रियों के प्रति पक्षपात मिलता है। संत ऑगस्टीन का कहना है कि **''सार्वजनिक और पुरुषों में बाहरी क्षेत्रों में औरत को घुसपैठ नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वे धार्मिक व्यक्तियों और पवित्र संतों में भी उत्तेजना जगा देती हैं।''**[19]इसी तरह की असमानता का व्यवहार पारसी धर्म में भी स्त्रियों के साथ किया जाता है। **''पारसियों में पुरुष दूसरे धर्म में विवाह कर सकते हैं, स्त्रियाँ नहीं। बहुत से आदिवासी इलाकों में स्त्रियों को पूजा करने से रोका जाता है।''**[20] गैर पारसी स्त्री से विवाह करने पर पुरुष को धार्मिक स्थानों में प्रवेश दिया जाता है, लेकिन यदि स्त्री गैर–पारसी पुरुष से विवाह कर ले तो उसका धार्मिक स्थान में प्रवेश निषेध कर दिया जाता है। यद्यपि यह भारत के संविधान की धारा 25 और 14 का उल्लंघन भी है।

हिंदू स्त्रियों को पवित्र स्थान शनि शिंगनापुर में जाने से रोकने की बात हो या हाजी अली की दरगाह में जाने से रोकने की बात हो। धर्म, जाति एवं लिंग के आधार पर भेदभाव सभी धर्मों में व्याप्त है। इसके कुछ अपवाद भी है–जैसे स्त्रियों की यज्ञ आदि धार्मिक कार्यों में समान भागीदारी का सवाल है तो यह अधिकार भी पुरुषों के लिए भी सुरक्षित है। इसी प्रकार **''कई लोग महिला अधिकार की बात करते हुए महिलाओं को पुजारी बनाने के उदाहरण पेश करते हैं, लेकिन आन्ध्र प्रदेश के विजयवाड़ा के भवानी दीक्षा मंदिर में महिला पुजारी तो है लेकिन उस पुजारी को ही मंदिर के अंदर प्रवेश की अनुमति नहीं है।''**[21]वैसे भी स्त्रियाँ पुरुषों के इस कुंठित नजरिए को सदियों से सहती रही है। कभी सती प्रथा के रूप में कभी

विधवाओं के लिए बनाए गए कठोर नियमों के रूप में, कभी देवदासी के रूप में और कभी धार्मिक कर्मकाण्डों के रूप में स्त्रियों को सदा प्रताड़ित किया जा रहा है। **''धर्मग्रंथ, धर्म, मूल्यों और सदाचार की दुहाई देते हुए निरन्तर स्त्री की अस्मिता को छिन्न भिन्न करते रहे हैं। हिन्दुओं में देवदासी प्रथा और मंदिरों के गर्भगृहों में स्त्री देह से साथ खिलवाड़ मंहतों–मठाधीशों की तरह पीर–मौलवियों की भी शक्ति और कार्यशैली यही है।''**[22]इसी तरह देवदासी प्रथा केवल भारत में ही बल्कि पूरे विश्व में प्रचलित थी। यह प्रथा धर्म के आड़ में स्त्री की देह के साथ खिलवाड़ के लिए थी। एक स्त्री जिसे कम उम्र में बेचा व खरीदा गया इसलिए कि वह एक स्त्री शरीर है।

पितृसत्ता ने स्त्री के लिए जहाँ एक तरफ सारे पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक मानदंड धर्म और जाति की आड़ में तय किये हैं। इस पारम्परिक मानसिकता में जी रहे व्यक्ति के लिए स्त्री को व्यक्ति या मनुष्य के रूप में स्वीकारने में बहुत कष्ट होता है। **''हर वर्ग– वर्ग–नस्ल–धर्म की स्त्रियों की कुछ समस्याएं विशिष्ट भी है– पर देह सबसे शोषण का मूलाधार है– बलात्कार इन्सेंस्ट, खून, यौन–शोषण प्रेमहीन विवाह–बंधन, घेरलू बेगार, मार–पीट, गाली गलौज, साफ–सुथरे और सुरक्षित प्रसव का अभाव, पर्दा सती, डायन–दहन, पोनोग्राफी, पण्यीकरण.....।''**[23]इस प्रकार प्राचीन काल से ही धर्म के नाम पर स्त्रियों की देह से खिलवाड़ होता आया है। पितृसत्तात्मक धर्म–व्यवस्था ने ऐसे मानदंड तैयार किये हैं, जो उनके अधिकारों की रक्षा भी करता है और स्त्रियों को सदा पुरुष की गुलाम बनाए रखने की वकालत भी करता है। **''याज्ञवलक्य तो अविवाहित स्त्री से बलात्कार करने वाले को दंड से मुक्त करने को तैयार है बशर्ते वह बन्दा बलात्कृत स्त्री से विवाह करने को राजी हो जाए। आपस्तम्भ ग्हयसूत्र भी विवाहिता स्त्री से बालात्कार को अविवाहिता के साथ किए गए व्यभिचार से अधिक दंडनीय मानते है, क्योंकि वह किसी पुरुष की सम्पत्ति बन चुकी है।''**[24]पितृसत्तात्मक प्रधान धार्मिक व्यवस्था में पुरुष वर्ग की तृप्ति के लिए यौन–शोषण की संभावनाओं को नष्ट नहीं करता है, बल्कि अपने फायदे के अनुसार स्थितियों को परिवर्तित कर लेता है।

प्राचीनकाल से ही स्त्रियों का धर्म के नाम पर न केवल शोषण होता आया है, बल्कि वर्तमान समय में भी स्त्रियों का धर्म के नाम शोषण हो रहा है । आज भी इस तरह के अंधविश्वास एवं धर्मपरम्परा के नाम पर हो रहे स्त्री शोषण के उदाहरण देखने एवं सुनने का मिल जाते हैं। **''14 जनवरी 2007 के अंक में .....धर्म द्वारा स्त्रियों के यौन शोषण की भयानक तस्वीरें पेश करते हैं, जहाँ दर्जन भर निःसंतान स्त्रियों को संतान की आशा में पेट के बल पंक्तिबद्ध लिटाया जाता है और बीस पच्चीस अधनंगे पुजारियों का दलउन्हें रौंदता हुआ आगे बढ़ जाता है।''**[25]इस प्रकार के अंधविश्वास और परम्परा के नाम पर हो रहे स्त्रियों के शोषण को समाज और परिवार द्वारा स्वीकृति दी जाती है, क्योंकि उनकी नज़र में धर्म के आगे स्त्रियों का कोई मान–अपमान नहीं होता है, उनकी भावनाओं को कोई स्थान नहीं दिया जाता है। इस प्रकार के धार्मिक व्यरभिचारों का विरोध करते हुए मृदुला सिन्हा कहती हैं कि **''धर्म सम्प्रदाय या रीतिरिवाज की आड़ में स्त्री को मशीन बना देना, उसकी जबान ही न खोलने देना कहीं से भी धार्मिक कृत्य नहीं है।''**[26]

भारतीय धार्मिक व्यवस्था में स्त्रियों को स्थान तो दिया गया है लेकिन हर रस्म में स्त्रियों को पुरुष के पीछे ही रखा जाता है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि वह पुरुष की अनुगामिनी है, इसका प्रमुख कारण यह है कि **''सारे विधान, सारी संहिताएं, सारे नियम, धर्म, कानून, पुरुषों ने रचे हैं, इसलिए हर कानून, हर रीति–रिवाज और परम्परा में पलड़ा उनके पक्ष में झुका हुआ है।''**[27]इसलिए स्त्रियों को असमानता के दलदल में धकेला जा रहा है। धर्म के नाम पर सारे

व्रत उपवास स्त्रियों को पुरुषों के लिए रखने की सलाह दी जाती है, लेकिन पुरुषों द्वारा स्त्रियों के लिए व्रत रखने की कोई परम्परा नहीं है। करवाचौथ पर स्त्रियाँ चन्द्रमा को देखकर पति की दीर्घायु की कामना करती हैं, इस अंधविश्वास पर मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं कि **''चन्द्रमा कोई मुकुट वाला देवता नहीं, कंकड–पत्थरों से बना पृथ्वी जैसा ग्रह है। वहाँ तो ऑक्सीजन की कमी है, और हम उसको देखकर अर्ध्य देते हुए पतियों की, बेटों की उम्रदराज के लिए उपवास रखकर प्रार्थना करते हैं। हाय ये अंधविश्वास।''**[28]

जिस देश में धार्मिक क्रियाकलापों में देवी–देवताओं में इतना भेदभाव हो वहाँ स्त्रियों को बराबरी का दर्जा कैसे मिल जाए यह पुरुष समाज को कदापि स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि **''धर्म भेदभाव करता रहा है। मनुष्य को प्रेम, बराबरी और मुक्ति देने के बजाए वह आपसी दुश्मनी फैलाने ऊँच–नीच का भेद पैदा करने तथा गुलाम बनाने का दोषी भी है.....पुराणों की कथाएं सुनाने वाले पंडित या कुरान की आयतें या बाइबिल पढ़ने वाले मुल्ला, पादरी, सभी औरतों को पुरुष के अधीन रहने की हिदायत देते हैं।''**[29]

भारतीय मानस में स्त्री की देवी की छवि बहुत पूजनीय रही है, यहाँ स्त्री विद्वान की श्रेणी में न रखकर देवी की श्रेणी में रख दी गयी है। वह हाड़–मास की मानव होने की सहजता और जन जीवन में घुल–मिल जाने की स्वाभाविकता से परे एक खास दुनिया की प्राणी मान ली जाती है। जिसकी एक काल्पनिक छवि है, यह काल्पनिक छवि कोई समस्या उत्पन्न नहीं करती है और न ही कोई चुनौती रखती है। इस काल्पनिक स्त्री की छवि को उसे दैवीय रूप से ढक दिया जाता है।

पितृसत्ता ने स्त्रियों के मन में धर्म का भय भी इस प्रकार से आरोपित किया है कि वे चुपचाप धर्म की आड़ में किए जा रहे हर अन्याय को सहने को तैयार हो जाती हैं तथा परिवार विशेषतः पुरुष की सुख–समृद्धि के लिए कठिन व्रत, उपवास करती हैं। धार्मिक किवदंतियाँ एवं मिथक भी स्त्री के अनुकूलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वर्तमान समय में अनेक स्त्रीवादी लेखिकाएं हैं जो इन धार्मिक रूढ़ियों व व्यभिचारों को समाप्त करने का प्रयास अपने लेखन के माध्यम से कर रही हैं। इन विषय को अपने लेखन का मुद्दा बनाकर विरोध कर रही हैं। जिसमें पुरुष समाज द्वारा ज्ञान के लिए व्याकुलता और जिज्ञासा स्त्री के लिए कुछ ऐसी बना दी जाती है जैसे वह उसकी विद्वता को कम कर देगी; हमारे समाज में तर्क करती; बहस करती; स्त्री को कभी स्वीकारा नहीं गया है, लेकिन वर्तमान समय की स्त्री लेखिकाएं तर्क भी करती हैं, और बहस भी करती हुई नज़र आती हैं। उनका मानना है कि धार्मिक पाखण्डों की अपेक्षा कर्तव्य एवं मानवता की भावना अधिक महत्वपूर्ण है। साथ ही वे मानती हैं कि स्त्री की मुक्ति के लिए रुढ़ परम्पराओं से मुक्त होना जरूरी है और इसके लिए स्त्री को स्वयं आवाज उठानी होगी।

सन्दर्भ–

1. अरोड़ा सुधा, आम औरत और जिन्दा सवाल, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–पृ0सं0–49
2. पुष्पा मैत्रेयी, खुली खिड़कियां, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–23
3. वही, पृ0 सं0–113
4. शर्मा क्षमा, स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, पहला सं0–2002, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–24
5. अरोड़ा सुधा, आम औरत और जिन्दा सवाल, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–पृ0सं0–119
6. पुष्पा मैत्रेयी, खुली खिड़कियां, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–215
7. अरोड़ा सुधा, आम औरत और जिन्दा सवाल, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–पृ0सं0–74
8. गुप्ता रमणिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, सं0–2014, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–196

9. अग्रवाल रोहिणी, स्त्री लेखन, स्वप्न और संकल्प, सं0–2011, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–30
10. गुप्ता रमणिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, सं0–2014, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–47
11. पुष्पा मैत्रेयी, खुली खिड़कियां, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–32
12. जनसत्ता, लखनऊ, दिनांक :– 28/12/2015, पृ0 सं0–6
13. जनसत्ता, लखनऊ, दिनांक :– 21/02/2016, पृ0 सं0–3
14. जनसत्ता, लखनऊ, दिनांक :– 28/12/2015, पृ0 सं0–6
15. अरोड़ा सुधा, आम औरत और जिन्दा सवाल, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–पृ0सं0–246
16. पुष्पा मैत्रेयी, खुली खिड़कियां, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–23
17. कात्यायनी, दुर्ग द्वार पर दस्तक, प्रथम संस्करण–1997, परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ, पृ0 सं0–72
18. गुप्ता रमणिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, सं0–2014, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–48
19. अरोड़ा सुधा, आम औरत और जिन्दा सवाल, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0सं0–246
20. शर्मा क्षमा, स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, पहला सं0–2002, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–66
21. जनसत्ता, लखनऊ, दिनांक :– 21/02/2016, पृ0 सं0–3
22. अग्रवाल रोहिणी, स्त्री लेखन, स्वप्न और संकल्प, सं0–2011, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–291
23. अनामिका, स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, प्रथम संस्करण–2012, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–34
24. पाण्डेय मृणाल, जहाँ औरते गढ़ी जाती है, संस्करण–2006, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–72
25. अग्रवाल रोहिणी, स्त्री लेखन, स्वप्न और संकल्प, सं0–2011, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–294
26. सिन्हा मृदुला, मात्र देह नहीं है औरत, संस्करण–2009 सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–219
27. शर्मा क्षमा, स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य, पहला सं0–2009, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–100
28. पुष्पा मैत्रेयी, खुली खिड़कियां, संस्करण–2009, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–96
29. गुप्ता रमणिका, स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, सं0–2014, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0–142